ॐ

नमः श्री सिद्धेभ्यः

पुरुषार्थसिद्धिउपाय प्रवचन

श्रीमद् अमृतचन्द्राचार्यदेव विरचित पुरुषार्थसिद्धिउपाय ग्रन्थ पर
पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के अलग से उपलब्ध प्रवचन

प्रवचन - १

गाथा - १४

फाल्गुन कृष्ण ११, शनिवार, दिनांक ११-०३-१९७२

यह पुरुषार्थसिद्धिउपाय है। १४वीं गाथा है। **आगे इस संसार का मूल कारण बताते हैं,....** अनादि संसार का मूल कारण क्या है, वह इसमें बताते हैं। गाथा।

एवमयं कर्मकृतैर्भावैरसमाहितोऽपि युक्त इव।
प्रतिभाति बालिशानां प्रतिभासः स खलु भवबीजम्॥१४॥

कहते हैं कि भगवान आत्मा शुद्ध आनन्दधाम, वह चीज़ पुण्य-पाप के विकल्प अर्थात् राग और शरीर आदि से भिन्न है। है? **इस प्रकार यह आत्मा कर्म द्वारा किये हुए नाना प्रकार के भावों से संयुक्त नहीं है...** ऊपर तो कहा गया है, देखो! ... **इस प्रकार यह आत्मा...** 'इस प्रकार' अर्थात् क्या? कि आत्मा की दशा में विभाव—शुभ और अशुभराग का होना, वह कर्म के संग के निमित्त से होता है। (पर्याय) स्वभाव के अन्तर कारण से वह विकार शुभ और अशुभभाव मलिन और मैले, वे निमित्त के लक्ष्य से होते हैं। ऐसा कहा न? **इस प्रकार यह आत्मा कर्म द्वारा किये हुए...** ऐसा। जिसमें कर्म निमित्त है। भाषा ऐसी है कि 'कृत'। '**कर्मकृतैः...**' इसका अर्थ कि वह स्वभाव का कार्य नहीं है। समझ में आया?

'**कर्मकृतैर्भावै:**' अर्थात् शुभ या अशुभराग, वह कर्म के निमित्त से होता उपाधि -विभावभाव है और शरीरादि, लक्ष्मी आदि वे सब भी कर्म के निमित्त से (आयी हुई) संयोगी चीज़ है। यह पुण्य और पाप, चाहे तो दया-दान-व्रत-भक्ति का भाव हो या चाहे तो हिंसा-झूठ-चोरी-विषयभोग वासना हो, वह विभावभाव कर्म के निमित्त के संग से उत्पन्न हुआ... विकारी परिणाम (का) कर्ता अज्ञानी स्वयं, परन्तु उसमें निमित्त कर्म का है। इसलिए इस प्रकार यह आत्मा कर्मकृत.... इस प्रकार... कर्ता स्वयं, परन्तु कर्ता में निमित्तपना... विभाव है, विकार है, दुष्ट है, मैल है; इसलिए उसका निमित्त कर्म—परचीज़ है। ऐसे रागादि और शरीरादि... शुभ और अशुभभाव या शरीर आदि '**असमाहितो...**' प्रभु आत्मा उनसे सहित नहीं है। आहाहा! अभी। अभी सहित नहीं है। क्योंकि वह विकारी परिणाम, वह आस्रवतत्त्व, भिन्न तत्त्व है। शरीर, वाणी, मन, वह भिन्न अजीवतत्त्व है। वह अजीव और पुण्य का भाव, चाहे तो भगवान की भक्ति का हो, चाहे तो महाव्रत का हो, करुणा का, सेवा का, प्रभु की स्तुति का, शास्त्र सुनने का, शास्त्र कहने का, समझ में आया? वह राग है और उस राग के निमित्तपने में कर्म निमित्त है, इसलिए वह उपाधिभाव है। आहाहा!

उसे **संयुक्त नहीं है तो भी...** चैतन्य भगवान पूर्णानन्द का नाथ समाधि और आनन्दसहित प्रभु आत्मा है। उसे ऐसे विकारी परिणाम और शरीर से रहित है, वह तत्त्व ही ऐसा है कि विभाव और संयोगी चीज़ से असंयोगी और स्वाभाविक वस्तु भिन्न है... विभाव से... ऐसा होने पर भी अज्ञानी जीवों को **संयुक्त जैसा प्रतिभासित होता है।** आहाहा! अज्ञानी को मिथ्याभ्रम—मिथ्या दृष्टि में रागसहित हूँ, शरीरसहित हूँ... अन्दर आयेगा आगे। समझ में आया? पुण्य-पाप के बहुत नाम दिये हैं। वर्ण, गन्ध, कर्म, पुत्र-मित्र-मकान-धन-धान्य—सब सहित हूँ, ऐसा जो मानता है, उसे मिथ्यात्वभावसंसार में भटकने का अधर्म बीज है। आहाहा! समझ में आया? चैतन्य भगवान आनन्दस्वरूप, वह पुण्य और पाप के विकल्प रहित है, उसे पुण्य और पापवाला मानना, वही मिथ्यात्वभाव और भव का बीज है। आहाहा! कहो, रतिभाई! तो यह पैसे का क्या करना? आहाहा!

पीछे है सब, देखो! पीछे लेख में है। **कर्मकृत कहते हैं। विपरीत भावोंरूप**

परिणमन करता है, उन भावों का कर्ता तो जीव ही है परन्तु वह जीव के निजभाव नहीं हैं, अत: उन भावों को कर्मकृत कहते हैं। अथवा कर्मकृत जो नाना प्रकार की पर्याय, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, कर्म, नोकर्म, देव-नारक-मनुष्य-तिर्यंचशरीर, संहनन,... हड्डियों की मजबूताई, **संस्थान**—शरीर का आकार ऐसे, **भेद अथवा पुत्र, मित्र, मकान, धन, धान्यादि...** इज्जत आदि.....

मुमुक्षु : इसमें मोटर रह गयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहो, सुमनभाई! इसमें मोटर किसमें आती है? यह सब आ गया इसमें। मोटर और फोटर.... कहते हैं, **इन समस्त भेद से शुद्धात्मा प्रत्यक्ष भिन्न ही है।** आहाहा! तथापि उसे... यह यहाँ साधारण लेना है न पहले?

अज्ञानी जीवों को संयुक्त जैसा प्रतिभासित होता है। आहाहा! निर्मल चैतन्य भगवान पूर्ण आनन्दस्वरूप का अज्ञानी जीवों को भान नहीं होने से, यह पुण्य और पाप, शुभ और अशुभराग... आहाहा! सूक्ष्म बात है। अनन्त काल में इसने... यह भव का बीज मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व अधर्म है, मिथ्यात्व संसार है, मिथ्यात्व आस्रव है, मिथ्यात्व आकुलता है, मिथ्यात्व दु:ख है। आहाहा! यह दु:ख है, क्यों?—कि जो इसकी चीज़ में नहीं, उसे अपना मानना—ऐसा मिथ्यात्वभाव, वह संसार का बीज चार गति में भटकने का, नरक और निगोद में जाने का पंथ है। आहाहा! समझ में आया?

यह मिथ्यात्व का पाप क्या है? इसका फल क्या है? उसकी इसे खबर नहीं। यह कहीं हिंसा करे, कुछ विषय भोगे, तो कहता है कि यह पाप है। आत्मा अपना निजस्वभाव छोड़कर, जो इसमें नहीं, उसे विषय बनावे और उस सहित माने, वह मिथ्यादृष्टि व्यभिचारी ही विषय का सेवन करनेवाला है। आहाहा! समझ में आया? अनन्त काल में कुछ रह गया (हो तो) यह। बाकी तो क्रिया दया-दान-व्रत-भक्ति-पूजा-सेवा-स्तुति अनन्त बार की। आहाहा! अनन्त बार दीक्षा, अनन्त बार आचार्यपद लिया, यह बाह्य द्रव्यलिंगी, परन्तु यह जड़ की द्रव्यलिंग की नग्नपने की क्रिया और अन्तर पंच महाव्रत के, २८ मूलगुण के विकल्प, अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य ऐसी जो वृत्तियाँ—उस वृत्ति और क्रिया से रहित चैतन्य है। आहाहा! समझ में आया?

ऐसा न जानकर अज्ञानी, राग की क्रिया, देह की क्रियासहित हूँ (—ऐसा मानता है)। यह अज्ञानी जीव '**बालिशानां...**' बालिश अर्थात् अज्ञानी, मूर्ख, अपनी जाति का अनजान और कुजाति को अपनी जाति में मिलानेवाला, ऐसा कहते हैं। आहाहा! '**बालिशानां युक्त एव प्रतिभाति...**' यह शुभ आदि विकार के परिणाम-वृत्तियाँ उठती हैं—भगवान का स्मरण और भगवान की स्तुति और भगवान की भक्ति, वह सब राग है। उस रागरहित चैतन्य है, तथापि दृष्टि में रागसहित अज्ञानी को भासित होता है, वह प्रतिभास ही निश्चय से संसार के बीजरूप है। आहाहा! गले उतरना कठिन पड़े। परन्तु इसे देखना ही कहाँ है? आहाहा! यह तो चैतन्य निर्मलानन्द... आहाहा! कहते हैं... बहुत संक्षिप्त शब्द में अधर्म और संक्षिप्त शब्द में धर्म की व्याख्या है यह। भगवान चिदानन्दस्वरूप प्रभु अनादि-अनन्त निर्मल चैतन्यज्योति है। वह भगवान तो पुण्य और पाप की... चाहे तो दुनिया की करुणा और कोमलता और परोपकार करने की वृत्तियाँ, यह दान की वृत्तियाँ... यह दान की वृत्ति, वह राग है और पैसे के दान के परमाणु अजीव हैं, उनसे सहित मानना... रहित है और सहित मानना। आहाहा! समझ में आया?

हमने मन्दिर बनाये, हमने पुस्तक बनायी, हमने दान में पाँच लाख दिये, कहते हैं कि वह चीज़ पर है। उसे मैंने बनायी और वह मुझ सहित चीज़ है... रहित है, तथापि सहित माना। दान में भी राग का मन्दभाव होता है, उससे रहित आत्मा है। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प, ऐसा कहते हैं, उसका विषय जो देव-शास्त्र-गुरु और अशुभराग तथा उसका विषय स्त्री-कुटुम्ब और परिवार-धन्धा... आहाहा! इन दोनों क्रिया से रहित आत्मा है। लो, मणिभाई आये अभी? सुनाई देता है मणिभाई? .... अब आये हैं तो सुने तो सही। कहते हैं, यह वकालत का धन्धा, यह सब जड़ की क्रिया है। दलील करना और पुस्तक के पृष्ठ फिराना, वह जड़ (की क्रिया) और उसमें राग हो विकार—इन दोनों से रहित आत्मा है, तथापि उनसे सहित मानना, यही अज्ञानियों का मिथ्यात्व और संसार का बीज है। आहाहा! समझ में आया?

इसी प्रकार यह व्यापार-धन्धा संसार का... पेढ़ी पर बैठकर हम ऐसा व्यापार करते हैं और ऐसा करते हैं, दो-पाँच लाख पैदा करते हैं। यह चीज़ इसकी नहीं, इसमें नहीं, इस सहित नहीं। ऐ रमणीकभाई! क्या होगा यह सब? मोटरपार्ट्स और क्या सब

होगा ? आहाहा ! रुपयों का धन्धा और मोटर का धन्धा और चाय तथा बीड़ी और तम्बाकू, शक्कर और बादाम, बड़ा तांबा और लोहा (आदि) सब अनेक प्रकार के धन्धे—इन सब चीज़ों से तो आत्मा रहित है। कपड़े का... ऐ पोपटभाई ! आहाहा ! कपड़े के अस्तित्व में आत्मा नहीं और आत्मा के अस्तित्व में कपड़े का धन्धा नहीं। है ? आहाहा ! अब यह ग्राहक-ब्राहक का कैसे होगा विमल ? यह जमीन हमारी। यह जमीन हमारी है, हमारी ५० हजार की आमदनी है। कहते हैं कि जमीन और आमदनी जड़ और परचीज़ है। उससे रहित प्रभु चैतन्य है। उनसे सहित मानना यही संसार में भटकने का, वृक्ष का जैसे बीज, वैसे यह संसार का महाबीज है। आहाहा ! कहो, समझ में आया ?

यह सब लोहे के कारखाने होते हैं न ? यह सब क्या कहलाता है ? दवा का यह तुम्हारा केशुभाई ! यह क्या दवा-बवा और सब शीशियाँ... आहाहा ! वह परपदार्थ—चीज़ **असमाहितो...** तीन काल में उनसे रहित है। और उस परपदार्थ के लक्ष्य से होता शुभ-अशुभराग, उससे वह **असमाहितो...** (अर्थात्) सहित नहीं है, तथापि अन्तर में उससे सहित हूँ, ऐसा जो अज्ञानी का मान्यपना—मान्यता, वह संसार के नरक, निगोद का बीज है। समझ में आया ? आहाहा ! हुआ ?

वह प्रतिभास ही निश्चय से... ऐसा है न ? **खलु**—वास्तव में... जिससे रहित है, उससे सहित मानना, ऐसी जो मिथ्याबुद्धि, मिथ्याश्रद्धा, सत्य से उल्टा असत्य-झूठापन... सत्यस्वरूप भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्द का स्वरूप है, ऐसे सत्यस्वरूप को... यह राग और परसंयोग जो असत् चीज़ है, उस असत् संग से (रहित) भगवान आत्मा सत्यस्वरूप है। आहाहा ! वही (रहित को सहित मानना) अज्ञानियों को भव का बीज है, उसमें भव फलता है। नरक और निगोद के, कीड़े और कौवे के भव का बीज यह है, इसमें से यह भव फलते हैं। आहाहा ! चन्दुभाई ! क्या करना इसमें ? इंजेक्शन और दवायें सब ध्यान रखे... कहो। ऐई ! आहाहा ! तेरा चैतन्यमूर्ति प्रभु ज्ञान और आनन्द आदि शुद्ध स्वभाव का भण्डार, उसे यह अशुद्धसहित मानना, यह संक्षिप्त... यह अज्ञानी के भव का बीज है।

टीका। इसका (गाथा का) विस्तार करते हैं। **इस प्रकार यह आत्मा...** 'इस प्रकार' (कहकर) १३वीं गाथा के साथ सम्बन्ध (स्थापित) करते हैं। **कर्म द्वारा किये**

हुए नाना प्रकार के भाव से... 'कृत' अर्थात्? यह सब उपाधि का भाव... आहाहा! कठिन बात, भाई! तीन लोक के नाथ ऐसा कहते हैं, सर्वज्ञदेव परमात्मा पूर्ण आनन्द का धाम, उनकी वाणी में ऐसा आता है कि हमारी स्तुति के प्रति तुझे जो राग है, (परन्तु) तेरा आत्मा तो रागरहित है। आहाहा! उसे रागसहित (मानना कि) इस भक्ति के रागवाला मैं हूँ, वह भव का बीज है।

संयुक्त नहीं है तो भी अज्ञानी जीवों को अपने अज्ञान से... और वापस इसमें कर्म के कारण से ऐसा है और अमुक के कारण से ऐसा है, ऐसा नहीं है। अपनी जाति को जानता नहीं...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अपने अज्ञान से... आहाहा! 'अपने को आप भूलके हैरान हो गया।' कोई ईश्वर इसे भटकाता है या कर्म इसे अज्ञान कराते हैं—ऐसा नहीं है। आहाहा! **अपने अज्ञान से...** और ज्ञानस्वरूप है, और फिर अपने अज्ञान से? क्या हुआ? भाई! यह चैतन्यबिम्ब प्रभु, इस चैतन्य की आँखें वह तो जगत की आँख है। आहाहा! जगतरूप नहीं। जगत के राग और जगत—यह सब जगत है। वह राग और दुनिया पूरी, उससे भगवान चैतन्यप्रभु ज्योति सहित नहीं है, रहित है। यह अज्ञानी को **कर्मजनित भावों से संयुक्त जैसा प्रतिभासित होता है।** अन्दर में वह मैलवाला भासित होता है, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? यह चैतन्य के प्रकाश का पूर, ऐसा प्रभु आत्मा मैलरहित होने पर भी अज्ञानी को मैलवाला भासित होता है, वह संसार का बीज है।

भावार्थ :- पहले ऐसा कहा गया है कि पुद्गलकर्म को कारणभूत रागादिभाव है... पहले १२ और १३ गाथा में कहा है। दोनों गाथायें अलग हैं। **पुद्गलकर्म को कारणभूत रागादिभाव है...** क्या कहा? नया जो कर्म बँधता है, उसमें निमित्त जीव का पुण्य और पाप का राग है। नये कर्म जो रजकण बँधे, उसका निमित्त पुण्य और पाप का राग है। वह कर्म के बन्धन में निमित्त है। एक बात। **रागादिभाव का कारण पुद्गलकर्म है...** आत्मा में जो पुण्य और पाप के विकल्प-राग है, उसका निमित्तकारण कर्म है। **इसलिए यह आत्मा निजस्वभावभाव की अपेक्षा कर्मजनित नाना प्रकार के भावों से**

भिन्न ही चैतन्यमात्र वस्तु है। समझ में आया? आहाहा! शब्द सरल हैं, (परन्तु) अन्दर भाव अलौकिक है, भाई! आहाहा!

कहते हैं, ऐसा जो कहा था कि तुझमें (होनेवाले) पुण्य और पाप के भाव, उसमें निमित्त कर्म था और नये कर्म बँधें, उसमें निमित्त तेरे पुण्य और पाप के भाव थे। **इसलिए यह आत्मा निजस्वभावभाव की अपेक्षा...** ऐसा। **कर्मजनित नाना प्रकार के भावों से...** विकारी परिणाम में कर्म निमित्त हैं, इसलिए विकारीभाव से रहित स्वभावभाव की अपेक्षा से यह विभाव से रहित है। क्योंकि उसमें—उपाधि में कर्म का निमित्त आया। निजस्वभावभाव... भगवान आत्मा ज्ञायकभाव का अस्तित्व, अपने आनन्द और ज्ञान में अस्तित्व ऐसा निजभावस्वभाव, उसकी अपेक्षा से पुण्य-पाप में कर्म का निमित्त है, इसलिए उसे कर्मजनित अनेक प्रकार के भाव कहे (गये हैं)। कर्मजनित कहने में आये हैं, ऐसा कहते हैं।

और इसलिए वह **भिन्न ही चैतन्यमात्र वस्तु है।** चैतन्यबिम्ब ज्ञान का स्वभाव... बहुत सूक्ष्म पड़े। आहाहा! यहाँ तो एक जरा सी प्रतिकूलता आवे, वहाँ (मानता है कि) मुझे आयी, अनुकूलता हुई तो मुझे हुई। परन्तु प्रतिकूलता-अनुकूलता तो परज्ञेय है। आहाहा! आहाहा! पाँच-दस लाख रुपये आये हों और जब जाये, तब इसे ऐसा लगता है कि अरे! आये समाते हैं परन्तु गये समाते नहीं। गये समाते नहीं, ऐसी बातें बनिया करते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु आये कहाँ है इसके पास? इसके कहाँ हैं? यही कहते हैं कि आये अर्थात् मेरे थे, वे आये? वे तो उनके कारण से वहाँ आये हैं। वे तेरे कहाँ थे? वह तो अजीवतत्त्व है। क्या होगा इसमें? आहाहा! अरे! तू चैतन्य भगवान है न! तुझमें तो प्रभुता पड़ी है। ऐसी पामरता का स्वामी हो और पामरतासहित माने तो मिथ्यादृष्टि मूढ़ है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! है न, यह पृष्ठ सामने पड़ा है। आहाहा! परन्तु अन्दर का पृष्ठ भूल गया है। आहाहा!

जरा सा कुछ ठीक पड़े वहाँ, आहाहा! मजा है और बादशाही है। पाँच-पच्चीस हजार पैदा होते हैं, रखो लापसी का आंधण। आहाहा! भगवान! तेरे घर में तो अग्नि

सुलगती है, कहते हैं। यह मुझे मिले और मेरे... आहाहा! गजब बात है। वहाँ तो मिथ्यात्व की आकुलता सुलगती है। आहाहा! कहा नहीं था कल? पति मरे वहाँ दुखियारी, ऐसा कहे। अरे भगवान! यह चैतन्यपति दृष्टि में मर गया है, वह दुखियारा है। आहाहा! आहाहा! अरे! इसकी खबर नहीं होती और यहाँ जरा पति मरे, पैसा जाये, शरीर में रोग हो, आहाहा! बीमावाला भागे, धन्धा यहाँ घटे, तब बीमावाला भागे, चारों ओर की बदले, तब इसे लगे कि अरे! अरे! दुःखी हैं। अरे! यह दुःखी के लक्षण नहीं। तूने दूसरे गज से-उल्टे गज से माप किया है। आहाहा! समझ में आया? यह सब मुझे हुआ, ऐसी जो मान्यता, वही मिथ्यात्व का महादुःख है। आहाहा! समझ में आया?

'सुखिया जगत में सन्त दूरिजन दुखिया।' जिसने राग और पर को नहीं माना और स्वभाव चैतन्य को जाना, वह जीव सुखिया है। चाहे तो नरक और निगोद... नरक में पड़ा हो जीव। आहाहा! अरे! यह गज तो किस प्रकार का! सातवें नरक का नारकी, परन्तु जिसे राग और शरीर से चैतन्यप्रभु भिन्न है, ऐसा जहाँ भान-आत्मज्ञान हुआ, वह सुखी है। छियानवें हजार रानियाँ और छियानवें करोड़ सैनिक, आहाहा! यह छियानवें करोड़ कहना (या) छियानवें लाख कहना... ओहोहो! आहाहा! कहते हैं कि वे मेरे (और) मैं उनका (माने), वह महा दुःखी है। आहाहा! कहो, समझ में आया? किस प्रकार की होगी यह बात? यह भगवान का कथन है, बापू! तू तेरे आत्मा को वर, राग को न वर अब, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? भाई! ऐसा मनुष्यदेह मिला न, प्रभु! तुझे। आहाहा! प्रभु के पास चिन्ता करे परन्तु कुछ हो ऐसा नहीं, यहाँ तो कहते हैं। वह कुछ दे, ऐसा है कहीं? हे भगवान! अब तो आप कुछ हाथ पकड़ो। भगवान कहते हैं कि यह तेरी मूर्खता है। समझ में आया? आहाहा! भगवान परद्रव्य है और उसकी ओर लक्ष्य जाये, तब राग (होता है), वह पर विकार है। अब उससे तिरने का उपाय इसे खोजना चाहिए। चन्दुभाई! ऐसा मार्ग है, भगवान! आहाहा!

कहते हैं, इस भगवान आत्मा का निज स्वभाव ज्ञान, आनन्द, शान्ति, स्वच्छता और प्रभुता है। ऐसे निज स्वभाव की अपेक्षा से कर्म के निमित्त से होते... 'जनित' कहा न यहाँ? अनेक प्रकार के भाव से **भिन्न ही चैतन्यमात्र वस्तु है। जिस प्रकार लाल फूल के निमित्त से...** टीकाकार दृष्टान्त देते हैं। **लाल फूल के निमित्त से...** निमित्त से, हों!

स्फटिक लाल रंगरूप परिणमन करता है... स्फटिक लाल रंगरूप परिणमती है, दशा में लाल दिखती है, **परन्तु वह लाल रंग स्फटिक का निजभाव नहीं है।** है वह निजभाव उसका?

'ज्यों निर्मलता रे स्फटिक की, त्यों ही जीव स्वभाव रे,
श्री जिनवीर ने धर्म प्रकाशिया, प्रबल कषाय अभाव रे।

आहाहा! भगवान परमात्मा सर्वज्ञदेव की वाणी में ऐसा कहा कि यह पद्धति है। जो वाणी में ऐसा दिव्यध्वनि का प्रपात (आया), उसमें आया कि जितना तुझमें राग आदि दिखता है, वह स्फटिक में लाल रंग दिखता है, ऐसी चीज़ है। तू ऐसा नहीं है। जैसे स्फटिक निर्मल है, वैसे चैतन्य भगवान जलहल ज्योति निर्मलानन्द भगवान है।

जैसे **स्फटिक लाल रंगरूप परिणमन करता है परन्तु वह लाल रंग स्फटिक का निजभाव नहीं है। स्फटिक तो स्वच्छतारूप अपने श्वेतवर्ण से ही विराजमान है।** आहाहा! **लाल रंग है, वह तो स्वरूप में प्रवेश किये बिना...** यह लालपना दिखता है, (परन्तु) स्फटिक के स्वरूप में लाल रंग का प्रवेश नहीं। श्वेत स्वभाव ऐसा जो स्फटिक, उसमें उसका (-लाल रंग का) अभाव है। **ऊपर-ऊपर ही झलक मात्र दिखाई पड़ता है।** आहा! समझ में आया? (समयसार) १४वीं गाथा में आता है न? जल के दल में... मीठे पानी का दल हो ऐसा, उसके ऊपर तेल का बिन्दु हो, उस तेल के बिन्दु की चिकनाहट का जल की स्वच्छता और दल में प्रवेश नहीं। वह ऊपर-ऊपर दिखता है। उसी प्रकार भगवान ज्ञानानन्दस्वरूप प्रभु, वह ज्ञान का स्वच्छ दल है, उसमें यह पुण्य-पाप के भाव की जो लालिमा और कालिमा दिखती है, वह आत्मा की नहीं है। वह स्फटिक रत्न का लाल रंग नहीं है। कठिन काम भाई कठोर! पूरा उथल-पुथल कर डालना...

यह सब मेरे नहीं, ऐसा कहने पर फिर डाल कहाँ देना इन्हें? डालने-निकालने की बात ही कहाँ है? मेरा मानता है, उसे छोड़कर, मेरा नहीं (—ऐसा मानना)। मैं तो चिदानन्दस्वरूप हूँ, ऐसा मानना, वह सब डाल दिया इसने। अथवा जहाँ थे वहाँ रखे। अपने में नहीं थे और जहाँ थे वहाँ रखे। अपने में नहीं थे और मान्यता से रखे थे, वह मान्यता छोड़ दी। आहाहा! कहो, सुमनभाई! क्या होगा यह सब? सब विकल्प उठते

हैं (कि) तेल का ऐसा करना, अमुक ऐसा करना। आहाहा! ऐई मणिभाई! अब मणिभाई बाहर से निवृत्त हुए। आहाहा! यह मोटरपार्ट्स तुम्हारे जैसे... मोटरपार्ट्स। हम ऐसा करते हैं, मोटरपार्ट्स ऐसे... इसे आता है, अमुक को आता नहीं। आहाहा! अरे भगवान! जिससे रहित है, उसकी जानकारी तुझे है? 'मुझे उसकी जानकारी है' यह मान्यता ही मूढ़ता और मिथ्यात्व है। आहाहा! कहो, समझ में आया?

यह दवा का ज्ञान, वकालत का ज्ञान—यह आत्मा का नहीं है। आहाहा! भाई! शास्त्र का ज्ञान, वह आत्मा का कहाँ है? आहाहा! यदि इसका ज्ञान हो तो इसे आनन्द आना चाहिए। इस शास्त्र के ज्ञान से भी रहित है। '**असमाहितो...**' आहाहा! तथापि उसे सहित मानना, आहाहा! उसे यहाँ परमात्मा चौरासी में भटकने का बीज कहते हैं। आहाहा! इस मिथ्यात्व जैसा कोई पाप नहीं, मिथ्यात्व जैसा कोई अधर्म नहीं, मिथ्यात्व जैसा कोई नरक और निगोद का बीज नहीं। आहाहा! समझ में आया? ज्ञानी भोग में और चक्रवर्तीपद में दिखता है, तथापि उस पद में नहीं है। आहाहा! और अज्ञानी त्यागी दिखता है बाह्य से, राज छोड़े, स्त्री-कुटुम्ब छोड़े, तथापि 'मैंने छोड़ा' उसने इस सहित माना है। समझ में आया? आहा! भारी जवाबदारी, भाई!

कहते हैं, वह **स्वरूप में प्रवेश किये बिना ऊपर-ऊपर ही झलक मात्र दिखाई पड़ता है**। कौन? विकार। **वहाँ रत्न का पारखी जौहरी तो ऐसे ही जानता है परन्तु अपारखी पुरुष को सत्यरूप लाल मणि की...** देखो! **सत्यरूप लाल मणि की भाँति...** लाल मणि होती है न (लाल) रंग की? लाल रंग की मणि। **सत्यरूप लाल...** अर्थात् क्या कहते हैं? लाल होती है न मणि, वह तो स्वच्छ है न? लाल मणि... वह मणि होती है। **सत्यरूप लाल मणि की भाँति लाल रंग के स्वरूप ही प्रतिभासित होती है**। जैसे, 'लाल मणि होती है' यह सच्ची बात है, (ऐसा मानता है), ऐसा ही इस रागसहित आत्मा को मानता है। मान लिया, बस, मान लिया। किसने कहा? ....झवेरी है न? सच्ची बात है। माणेक लाल होता है। माणेक लाल है, यह सत्य ही बात है, इसी प्रकार स्फटिक को लाल रंगवाला मानना, वह मूढ़ता है। आहाहा! समझ में आया?

लाल होता है न? है न अपने उसमें अभिनन्दन ग्रन्थ में नीचे? ... आहाहा! **अपारखी पुरुष को सत्यरूप लाल मणि की भाँति लाल रंग के स्वरूप ही...** स्फटिक

प्रतिभासित होती है। उसी प्रकार... यह दृष्टान्त हुआ, **कर्मनिमित्त से आत्मा रागादिरूप परिणमन करता है,...** कहीं अपने स्वभाव के आश्रय से नहीं परिणमता। परिणमना अर्थात् होना। पुण्य और पाप की वृत्तियाँ कर्म के निमित्त के संग से होती है। **वह रागादि आत्मा का निजभाव नहीं है,...** आहाहा! वह लालचन्दभाई ने यह गाथायें निकाली हैं। यह पुण्य और पाप... आहाहा! जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, ऐसा जो राग—वह रागादिभाव निज भाव नहीं है। आहाहा! कुछ प्रसन्न हो जाये, आहाहा! तीर्थंकरगोत्र बँधे। परन्तु तुझे नहीं होता, सुन न! जिसे बँधता है, वह (ज्ञानी) अपने को मानता है (कि) मुझे बन्धन भी नहीं और जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह मेरा नहीं। आहाहा! जो विकार के परिणाम और पर से छूटा है, उसे ऐसे भाव होते हैं, परन्तु वह भाव मेरे हैं, ऐसा धर्मी को नहीं होता। आहाहा!

पंच महाव्रत के परिणाम, अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह विकल्प और राग है। अब उसे वह धर्म माने और या उससे सहित माने। उससे रहित होने पर भी सहित माने, वह चैतन्य के निर्मलानन्दस्वरूप को मिथ्यात्व का कलंक लगाता है। समझ में आया? आहाहा! बापू! संसार के बीज से छूटना और यह मोक्ष के बीज को पकड़ना, यह कहीं बातें नहीं है। यह अनन्त काल में इसने किया नहीं। 'दीन हुआ प्रभु पद जपे, मुक्ति कहाँ से होय' आता है या नहीं? 'दीन भयो प्रभु पद...' हे नाथ! अब तो उभार प्रभु! यह दुःखडा सह्या जाता नहीं। भगवान कहते हैं कि यह दुःख है, वह तेरे माने हुए हैं, यह मैंने कहा नहीं। समझ में आया?

ऐसी दीनता का मनुष्य... वाडीलाल मोतीलाल का आया है एक बार। ७१ के वर्ष की बात है। वाडीलाल मोतीलाल थे न? अहमदाबाद। जैन समाचार। उसमें यह चित्र आया था। (संवत्) १९७१ की बात है, ऐसे पर्वत के ऊपर भगवान है ऊपर। गौतम जाते हैं, परन्तु जरा वस्त्र पहनकर जाते हैं, उस वस्त्र में फट-फट हवा-हवा बहुत भरती है, (इसलिए) चढ़ना मुश्किल पड़ता है। हे भगवान! यह सब मुझे अवरोधक है यहाँ आने में। भगवान वहाँ से कहते हैं.... यह ७१ में कहा था। यह वृत्ति के वस्त्र छोड़ दे। छोड़े बिना मेरे पास नहीं आया जायेगा। वस्त्र से ऊपर जाना है। वस्त्र ऐसे हों कि फर-फर हवा भरती है, इसलिए उसे रोकते हैं। इसी प्रकार वीतराग कहते हैं कि जिसे आत्मा

में आना हो, उसे पुण्य-पाप की वृत्तियों के वस्त्र छोड़कर आया जायेगा। समझ में आया? यह वृत्तियाँ साथ में रखकर अन्दर (नहीं) जाया जायेगा। यह साथ में रखे, ऐसा माने वह मिथ्यादृष्टि है—ऐसा यहाँ तो कहते हैं। आहाहा!

कठिन मार्ग भाई! वह तो सीधासट्ट कर डाला। अपवास करे तो निर्जरा हो जाये, लो! यह वर्षीतप करते हैं, देखो न! अपवास करते हैं, वर्षीतप करते हैं। उसका क्या करना समझ बिना? यह अपवास करे, प्रौषध करे, अठ्ठम (करे), वहाँ उसे हो गयी निर्जरा, निर्जरा हो गयी और धर्म हो गया, मोक्ष का कारण। ऐई! इतना करना नहीं आया अनन्त काल में। शरीर अच्छा हो... यह अपवास करे तो शरीर सूख जाये और गिना जाये बहुत (धर्म)। शरीर के ठीक हों, वे सब अपवास में चढ़ जाते हैं; बुद्धि के वे हों, वे बातों में चढ़ जाते हैं। समझ में आया? और पैसेवाला हो, वह दान में चढ़ जाता है। तीनों में धर्म होता है, ऐसा वे लोग मानते हैं। आहाहा! भाई! इन तीनों चीज़ों से भिन्न हो। आहाहा! ऐसे कर्म निमित्त से...(रागादि) आत्मा के निज भाव नहीं हैं। आत्मा अपनी स्वच्छतारूप चैतन्यगुण में विराजमान हैं। आहाहा! प्रभु तो अपनी अस्ति में ज्ञानानन्द की स्वच्छता में विराजता है। उस राग में आत्मा और आत्मा में राग, आहा! यह भेद करना...

आत्मा तो अपने स्वच्छतारूप... जैसे स्फटिक निर्मलता में निर्मलपने विराजमान है। लालमणि की भाँति स्फटिक लाल रंगवाला नहीं हुआ। लाल से तो वह निर्मल भिन्न रहा है। उसी प्रकार भगवान आत्मा कर्म के निमित्त से (होनेवाले) पुण्य-पाप के विकल्प और भाव के रंगसहित हुआ नहीं। राग के रंगभावसहित हुआ नहीं। उससे रहित चैतन्य विराजता है। आहाहा! जहाँ नजर डालने से राग नहीं... आहाहा! समझ में आया? यह बहुत करने का कठिन, हों! कोई गुरु की कृपा हो जाये और परमेश्वर की दया हो जाये (तो) नहीं होगा? परमेश्वर ऐसे होंगे दया बिना के?

वहाँ उतरे थे... थे न तुम्हारे कान्तिभाई? परमात्मा की कृपा से सब व्यवस्थित हुआ। भाई! वहाँ गये थे न अभी?

मुमुक्षु : राजकोट।

पूज्य गुरुदेवश्री : राजकोट। रात्रि में दो व्यक्ति आये। हमारे खोलना था (उद्घाटन

करना था, तो) नाम लिखना था। 'कुन्दकुन्द' इतना नाम लिखना था। नाम लिखना था तो अब (लिखनेवाले) खोजना कहाँ? वहाँ ११ बजे दो व्यक्ति आये। क्या काम है तुम्हारे... ? खबर पड़ी हो किसी को। सब धन्धेवाले ध्यान रखते हों न? वहाँ कहाँ परमेश्वर ने भेजे थे? परन्तु वे कहे कि ऐसे परमात्मा की कृपा से सब.... लोग तो ऐसा कहे, आपकी कृपा से हमारा सब व्यवस्थित हो गया। और ऐसा कहे। किसी की कृपा से नहीं, वह तो होनेवाला हो, वह बाहर से होता है। कृपा-बृपा कहाँ काम करती थी? ....और जगत को भ्रमणा के भण्डार में उतार दिया है।

कहते हैं, **रागादि है, वह तो स्वरूप में प्रवेश किये बिना...** है न अन्दर? यह स्फटिकमणि में लाल फूल के संग से लालिमा की जो झाँई दिखती है, उस स्फटिकमणि की स्वच्छता में वह लालिमा प्रविष्ट नहीं है। उसी प्रकार कर्म के निमित्त से होनेवाला विकल्प शुभ और अशुभराग, वह अन्दर प्रभु आत्मा की स्वच्छता में प्रविष्ट नहीं है; भिन्न है। आहाहा! इसने उपार्जित राग का कर्ता होकर अज्ञान करता है। यह राग अन्दर में नहीं है, कहते हैं। समझ में आया? ऐसा मार्ग परमात्मा का है, इससे कोई दूसरे प्रकार से ढीला और दूसरे प्रकार से बतायेगा, (तो) उसकी जिन्दगी उजड़ेगी। आहाहा! समझ में आया? भाई! दूसरे धर्म करे तो अपने... कोई करे, कोई करावे और कोई अनुमोदन करे, लो। कोई धर्म करता हो, उसमें अपने को अनुमोदन करना। परन्तु तेरा अनुमोदन का विकल्प राग है, सुन न! अनुमोदना कहाँ हुई है वह? आहाहा!

कहते हैं, **रागादि है, वह तो स्वरूप में प्रवेश किये बिना ऊपर ही ऊपर झलकमात्र दिखाई देते हैं।** अरे! स्फटिकमणि में लाल रंग की जो झाँई दिखती है, वह ऊपर-ऊपर दिखती है, अन्दर में है (नहीं)। जैसे जल में तेल की चिकनाई के बिन्दु ऊपर-ऊपर दिखते हैं, पानी में उनकी चिकनाई नहीं है। उसी प्रकार भगवान आत्मा चैतन्यबिम्ब अस्तिवाला पदार्थ प्रभु, उसमें पुण्य और पाप की झलक ऊपर-ऊपर दिखती है, अन्दर में प्रविष्ट नहीं होती। आहाहा! यह तो कुछ क्या कहते हैं यह? समझ में आया? यहाँ तो व्यवहाररत्नत्रय देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प, पंच महाव्रत का विकल्प, शास्त्र के पठन का विकल्प—यह सब राग ऊपर-ऊपर तैरता है, अन्दर में प्रविष्ट नहीं होता। आहा! यह वह कहीं वीतरागी स्वरूप! उसमें राग कैसा? कहते हैं। आहा! राग

की गन्ध कैसी अन्दर? ऐसे वीतरागस्वरूप चैतन्य प्रभु की दृष्टि करके अनुभव करना, इसका नाम धर्म है। दरबार! भारी बात ऐसी!

ऊपर ही ऊपर झलकमात्र दिखाई देते हैं। झलक खोटी, हों! आहाहा! **वहाँ ज्ञानी स्वरूप का परीक्षक तो...** धर्मी जीव तो स्वरूप की परीक्षा करनेवाला है। **ऐसे ही जानता है...** ऐसा ही जानता है, ऐसा। **ज्ञानी स्वरूप का परीक्षक तो ऐसे ही जानता है...** क्या? कि रागादि ऊपर झलकते हैं, अन्दर में है नहीं, ऐसा ज्ञानी-धर्मी मानता है। आहाहा! वह व्यवहार मानो ऊपर... भाई! यह तो वह का वह ऊपर... आहाहा! चन्दुभाई! १२वीं गाथा में आया न? वह तो दूसरी शैली से बात की है। आहाहा! अब वे कहें, व्यवहार करना... व्यवहार करना... अरे! करने की बात कहाँ है? सुन न! आहाहा! यह विकल्प होते हैं, पूर्णदशा प्राप्त न हो वहाँ। उसे वह जानता है कि मुझमें नहीं, मैं इनका ज्ञान करनेवाला हूँ। आहाहा! ऐसी सम्यग्दर्शन की पद्धति है। यह व्यवहार के विकल्प....

कहते हैं, **परीक्षक तो ऐसे ही जानता है...** कि मुझमें नहीं। व्यवहार मुझमें नहीं। ऐसा आया या नहीं इसमें? चन्दुभाई! क्या कहा? भगवान की भक्ति और भगवान का स्मरण—यह विकल्प मुझमें नहीं है। मुझमें हो, तब तो मैल हो गया। अन्दर स्वच्छता—निर्मलता में कहाँ आया? आहाहा! **अपरीक्षक जीवों को सत्यरूप आत्मा...** सत्यरूप आत्मा, ऐसा कहा था न? लालमणि... भाई! उसमें 'सत्यरूप लाल मणि' कहा था। वह यहाँ सत्यरूप आत्मा... सत्यरूप आत्मा... कहा न? क्या कहा यह? माणेक। यह लाल माणेक, वह तो स्वरूप ही उसका है। स्फटिक का वह स्वरूप नहीं। वैसे भगवान आत्मा **सत्यरूप आत्मा...** आहाहा! सत् साहेब प्रभु! ऐ, प्रकाशदासजी! लो, यह सत् साहेब (आत्मा) है। आहाहा!

सत्यरूप आत्मा,... त्रिकाल सत्यरूपस्वरूप भगवान, वह पुण्य-पाप के असत्‌रूप से कभी हुआ नहीं। आहाहा! यह वह कहीं दृष्टि का पलटा! और उसका फल भी मुक्ति है। आहाहा! और उसे अपना मानना, वह संसार का बीज है। आहा! दो बातें हैं। सुहाये ऐसा कर। **सत्यरूप...** भगवान **आत्मा पुद्‌गल कर्मवत् रागादिस्वरूप ही प्रतिभासित**

होता है। सत्यरूप आत्मा पुद्‌गलकर्म की भाँति रागादि स्वरूप ही इसे प्रतिभासित होता है, ऐसा कहते हैं। यह राग है, वही मैं हूँ। आहाहा! पर्यायबुद्धि है न यह? विकल्प उठा है, दया-दान-व्रत-भक्ति आदि का, वही मैं हूँ। ऐसा राग कहीं जड़ को होता है? ऐसा। इसलिए मुझे होता है। ऐसा अज्ञानी को पुद्‌गलकर्म की भाँति रागादि स्वरूप ही प्रतिभासित होता है, ऐसा।

यहाँ प्रश्न : आपने ही तो रागादिभावों को जीवकृत कहा था। समझ में आया? यह १२वीं गाथा। उसमें नहीं। १२वीं गाथा में कहा। '**जीवकृतं परिणामं निमित्तमात्रं प्रपद्य पुरन्ये।**' पुस्तक में है १२वीं गाथा। यहाँ पुस्तक रखी है। यह पुरुषार्थसिद्धिउपाय यहाँ बसाया नहीं? कहाँ है? थोड़े हैं कोई कहता था। ऐसा होगा? यह कलशटीका तो बहुत है। २०० है... कहो, समझ में आया? कोई कहता था कि एक-दो है। इसमें ध्येय होगा किसी का। यह क्या कहलाता है? कलशटीका २०० है। ऐई, छबीलभाई! देखो! यह रहे। हमारे कहे, इस प्रकार से, हमारे देखने को खबर नहीं न। .... आहाहा!

कहते हैं, **आपने ही तो रागादिभावों को जीवकृत कहा था।** १२वीं गाथा में। **यहाँ उन्हें कर्मकृत कैसे कहते हो?** आहाहा! समझ में आया? ऐसा शिष्य का प्रश्न है। **उसका उत्तर :- रागादिभाव चेतनारूप हैं...** अर्थात् चेतनाभास—उसकी दशा का रूप है, ऐसा कहते हैं। वह कहीं परमाणु का रूप नहीं। वह रजकण नहीं, जड़ अजीव नहीं। वह **रागादिभाव चेतनारूप हैं, अतः उनका कर्ता जीव ही है...** आहाहा! **परन्तु यहाँ श्रद्धा करवाने के निमित्त मूलभूत जीव के शुद्धस्वभाव की अपेक्षा से रागादिभाव कर्म के निमित्त से होते हैं, इसलिए कर्मकृत कहा है।** आहाहा! इसका विशेष (कहेंगे)।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन - २

गाथा - १४-१५

फाल्गुन कृष्ण १२, रविवार, दिनांक १२-०३-१९७२

यह पुरुषार्थसिद्धि उपाय, १४वीं गाथा चलती है। पीछे अन्तिम लाईन है, देखो! फिर से लेते हैं। पृष्ठ है न पृष्ठ, उसमें अन्तिम लाईन है। उसमें कहा है गाथा की शैली।

यहाँ प्रश्न... यह क्या बात चलती है? कि यह चैतन्यस्वरूप भगवान आनन्दमूर्ति आत्मा, वह विकारीभाव, उपाधिभाव और शरीर आदि से असमाहित अर्थात् सहित नहीं है, तथापि ज्ञायक त्रिकाली अपना निजस्वभाव शुद्ध आनन्दस्वरूप आत्मा के अज्ञान के कारण, यह पुण्य और पाप के भाव और शरीर सहित हूँ—ऐसा जो अन्तर में भासित होना, उसका नाम भव का बीज मिथ्यात्व है। बहुत संक्षिप्त है, परन्तु है... यह गाथा में है न? तब अन्तिम प्रश्न किया। देखो! अन्तिम लाईन है। **यहाँ प्रश्न :- आपने ही तो रागादिभावों को जीवकृत कहा था...** अब, यह क्या तुमने कहा? पहले से तो आपने हमको ऐसा समझाया कि भगवान आत्मा चैतन्यबिम्ब आनन्दकन्द ध्रुवस्वभाव है, उसे पुण्य-पाप के रागवाला जानना, मानना, जो सहित नहीं, तथापि सहित मानना—उसे तो आपने भव का बीज मिथ्यात्व कहा था। और तुमने ही कहा था कि विकारीभाव जीवकृत है। समझ में आया? १२वीं गाथा में आया था। १२... १२... जीवकृतं... १२ गाथा में। समझ में आया?

यह तो मुद्दे की रकम की बात है कि भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में सत्यस्वरूप, आनन्दस्वरूप, ज्ञायकस्वरूप, पूर्ण आनन्द आदि अनन्त शक्ति का पूर्णरूप ऐसा आत्मा है। वह आत्मा शरीर-वाणी-मन सहित तो नहीं, (परन्तु) रहित है, परन्तु वह पुण्य और पाप के भाव... जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, जिस भाव से स्वर्ग मिले, जिस भाव से ऊँचा आहारक शरीर हो, ऐसा बँधे, जिस भाव से पुण्य बाँधकर अरबों रुपये मिलें—उस भावरहित आत्मा है। समझ में आया? उसे सहित मानना, वह

भव का बीज मिथ्यात्व है। आहाहा! तब शिष्य ने प्रश्न किया, प्रभु! यह तो दो बातें हुई। **आपने ही तो रागादिभावों को जीवकृत कहा था...** पण्डितजी! उसमें पहले एक आया था, भाई! व्याप्य-व्यापक की व्याख्या आयी थी। जो सहचर—साथ में हो, उसे व्याप्ति कहते हैं। आता है कुछ तुम्हारे संस्कृत में? ऐई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह। यह संस्कृत के प्रोफेसर हैं। उसमें है, मूल बड़े शास्त्र में है। पृष्ठ में नहीं। पेपर है? यह पृष्ठ १५ है १५।

नीचे है न? **व्याप्य-व्यापकभाव अर्थात् क्या...** अन्तिम पेरेग्राफ। **वह कहते हैं। जो नियम से सहचारी हो, उसे व्याप्ति कहते हैं।** अर्थात्? **जिस प्रकार धुँआ और अग्नि में साहर्च है अर्थात् जहाँ धुँआ होता है, वहाँ अग्नि होती ही है अग्निा के बिना धुँआ नहीं होता।** बराबर है? धुँआ हो वहाँ अग्नि होती है और अग्नि बिना धुँआ नहीं होता। धुँए के बिना अग्नि होती है। अग्नि के बिना धुँआ नहीं और धुँआ बिना... अग्नि न हो और धुँआ हो, ऐसा (नहीं) है, उसे व्याप्ति कहते हैं। है न? **नियम से सहचारी हो, उसे व्याप्ति कहते हैं।** जैसे धुँए का आया न? **उसी प्रकार रागादिभाव...** पुण्य और पाप की विकल्प दशा **और आत्मा में सहचारीपना है।**—साथ में रहनेवाले हैं। **जहाँ रागादि होते हैं, वहाँ आत्मा होता ही है आत्मा के बिना रागादि नहीं होते।** वस्त्र में होंगे? लकड़ी में होंगे? समझ में आया? पुण्य और पाप के विकल्प—आस्रव वे आत्मा के बिना नहीं होते। समझ में आया? रागादि हों, वहाँ आत्मा होता है। आत्मा बिना वह पुण्य और पाप के रागभाव होते नहीं। पुण्य-पापभाव बिना आत्मा हो, वह अलग बात है। जैसे धुँए बिना अग्नि अकेली होती है, परन्तु धुँआ हो और अग्नि न हो, और अग्नि के बिना धुँआ हो (ऐसा नहीं होता)। समझ में आया?

यह तो जरा संस्कृत में 'मौजूद' की बात है सही। उसी प्रकार आत्मा में... शरीर, वाणी, मन तो भिन्न जड़ चीज़ है। परन्तु दया-दान-व्रत-भक्ति, काम-क्रोध के भाव जो रागभाव है, वह बिना आत्मा नहीं होता। समझ में आया? है न? रागादि हों, वहाँ आत्मा होता ही है और आत्मा बिना अकेले जड़ में रागादि नहीं होते। **इस व्याप्ति क्रिया**

में... यह व्याप्ति हुई (अर्थात्) एक-दूसरे को सम्बन्ध हुआ। राग-विकल्प और आत्मा, ऐसी क्रिया में **जो कर्म है, उसे व्याप्य कहते हैं...** कर्म अर्थात् राग और द्वेष के परिणाम, वह व्याप्ति का कर्म अर्थात् कार्य, उसे व्याप्य कहते हैं और **आत्मा कर्ता है, उसे व्यापक कहते हैं।** पर्याय कर्ता और द्रव्य कर्ता नहीं—यह बात अभी यहाँ नहीं है। जो सवेरे आता है कि राग या निर्मल पर्याय का कर्ता द्रव्य नहीं है। वह तो दो की भिन्नता करने को (कहा)। परन्तु पर से भिन्न करने में पुण्य और पाप के विकल्प आत्मा बिना नहीं होते। समझ में आया?

रागादि न हो, वहाँ आत्मा होता है, परन्तु आत्मा न हो और रागादि हों, (ऐसा होता नहीं)। अरे! ऐसा सब सीखना पड़ता होगा? ऐसा यहाँ व्यापक... आत्मा कर्ता-व्यापक और विकारी परिणाम कर्म—व्याप्ति क्रिया का कार्य, वह उसका कर्म। अर्थात् व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध हो, वहाँ कर्ता-कर्म होता है, ऐसा कहते हैं। यह बात यहाँ सिद्ध की है कि भाई! कर्तृत्व तो तुमने जीव को कहा था। रागादि, पुण्य-पाप के परिणाम जीव का किया हुआ कार्य, उसका व्याप्य है (और) जीव व्यापक है। सूक्ष्म बातें भाई! ऐसा कहा था न? यहाँ **उन्हें कर्मकृत कैसे कहते हो? उसका उत्तर।** है, पृष्ठ में है।

कहते हैं कि **रागादिभाव चेतनारूप है...** वह चैतन्य की दशा में है, कहीं जड़ की दशा में नहीं है। आहाहा! कहीं लकड़ी को राग नहीं होता, पत्थर को नहीं होता। उसे इस लोहे को राग है? पुण्य और पाप के भाव आत्मा के बिना नहीं होते। ऐसे चेतनारूप हैं, ऐसा आपने कहा था। **अतः उनका कर्ता जीव ही है, परन्तु...** अब उत्तर देते हैं। कर्ता तो जीव है, (परन्तु) अज्ञानभाव करे तब तक... अज्ञानभाव से करे तब तक यह पुण्य और पाप की वृत्तियाँ दुःखरूप आकुलता है। आहाहा! उसे वह जीव करता है। कहीं पुद्गल करता है और कर्म करता है और जड़ में राग होता है—ऐसा नहीं है। आहाहा! कहो, सुमनभाई! यह तो समझ में आये ऐसा है, हों! बात जरा लॉजिक से आती है। यह भी ऐसा तुम्हारे वहाँ तेल में आता है? आहाहा! **परन्तु यहाँ श्रद्धान करवाने के निमित्त...** देखो! भाषा। यह चीज़ तेरी नहीं। तेरी हो वह त्रिकाल रहे और त्रिकाल रहे वह तेरी हो। आहाहा! ऐसा त्रिकाली भगवान आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप,

सत् अर्थात् शाश्वत् (और) ज्ञान का पुंज और आनन्द का परिपूर्ण... सवेरे आया था न? ज्ञान और दर्शन से परिपूर्ण वस्तु है। वस्तु एक, उसमें अनन्त गुण का परिपूर्ण उसका स्वरूप का रूप है। आहाहा! ऐसे स्वरूप की श्रद्धा कराने के लिये... समझ में आया? आहाहा! है न?

यहाँ श्रद्धान करनवाने के निमित्त मूलभूत जीव के शुद्धस्वभाव की अपेक्षा से... कहा है। आहाहा! मूलभूत... यह त्रिकाली भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्द से परिपूर्ण स्वभाव से भरपूर पदार्थ है, उसकी श्रद्धा और उसका अनुभव कराने के लिये, रागादिभाव कर्म के निमित्त से होते हैं, इसलिए कर्मकृत कहा है। कहो, चन्दुभाई! लो, यह थोड़ा स्पष्टीकरण हुआ। वह कहे, इस भूतड़ा में आयेगा उसकी अपेक्षा थोड़ा... कहो, समझ में आया? भूत का दृष्टान्त आता है न अपने? आहाहा! भगवान शाश्वत् रहनेवाली चीज़-अविनाशी वस्तु है और उसमें ज्ञान, दर्शन, आनन्द—ऐसा उसका परिपूर्ण स्वभाव है और अविनाशी त्रिकाल आत्मा के साथ रहनेवाले हैं। ऐसे त्रिकाली स्वभाववान के त्रिकाली स्वभाव की श्रद्धा कराने के लिये '**असमाहितो**' (होने पर भी) समाहितो भासित होता है, ऐसा जो कहा, उसका यह अर्थ करते हैं। भगवान आत्मा निर्मलानन्द प्रभु, वह पुण्य और पाप के विकार और शरीर से रहित है। भगवान! तेरी चीज़ रहित है। वहाँ दृष्टि लगा। जिससे रहित है, उसके ऊपर की दृष्टि छोड़ दे। अनन्त... अनन्त... आनन्द और ज्ञान का सागर भगवान है, वहाँ दृष्टि लगा, जिससे सहित है। आहाहा! समझ में आया?

शुद्धस्वभाव की अपेक्षा से... ऐसा कहा न? वह पुण्य-पाप का भाव, वह अशुद्धभाव है और क्षणिक है, अनित्य है, उपाधि है, कर्म के निमित्त के संग से हुई उपाधि है। जैसे स्फटिक में लाल और पीले फूल के संग से स्फटिक में लाल और पीली झांईं दिखती है, वह स्फटिक का स्वरूप नहीं है। स्फटिक उस परिणाम का कर्ता और वह परिणाम उसका कर्म है, परन्तु त्रिकाली स्वभाव की अपेक्षा से... आहाहा! वह स्फटिक की निर्मला-उज्ज्वलता की अपेक्षा से जो फूल के संग में लाल रंग की झलक दिखती है, वह उसकी नहीं है। उस स्फटिक की स्वच्छता की प्रतीति कराने के लिये

'वह इसका नहीं है' ऐसा कहा गया है। समझ में आया? आहाहा! इसने अनन्त काल में जीव का स्वभाव क्या है, उसकी इसने श्रद्धा ही नहीं की। यहाँ तो शुद्ध की श्रद्धा कराने के लिये, अशुद्धता इसकी नहीं है, ऐसा सिद्ध करना है। समझ में आया?

यह शरीर-वाणी-मन तो कहीं रहे, वे तो पर हैं। आहाहा! परन्तु इसे इतनी खबर नहीं पड़ती? कि देह छोड़े तब अकेला आत्मा चला जाता है। यह धूल भी साथ में नहीं आती। यह रजकण पड़े (रहे)... लो! स्त्री-पुत्र-कुटुम्ब... भरे घर में से कैसे (जाना) कैसे सुहाया—ऐसी स्त्रियाँ रोती हैं न वह मेरे तब। भरे घर में से जाकर श्मशान में कैसे (सुहाया)? कहाँ उसे सुहाता था वहाँ? अब घर भरा कब था? वह तो जगत के जड़ के भरे हुए पदार्थ (-शरीर) में अन्दर आया था। आया और उसने माना था कि यह मेरे हैं। मूढ़ होकर पकड़कर बैठा था। यह तो इसे प्रत्यक्ष दिखता है कि यह छोड़े तब कहीं रहता नहीं। जीव गया? 'जीव गया' ऐसा कहते हैं न? यह रहा शव। यह कहीं इसका नहीं था, इसमें नहीं था, इसका होकर रहा नहीं था। बराबर होगा यह? यह सब स्थूल शरीर है मोटा, लो! आहाहा! यह (शरीरादि) तो इसके नहीं, इसकी मेरे (रूप की) श्रद्धा हो, वह तो छोड़! परन्तु पुण्य-पाप के भाव मेरे हैं, ऐसी श्रद्धा छोड़, इसलिए यहाँ तो कहा है। क्योंकि त्रिकाली स्वभाव के साथ कृत्रिम क्षणिक उपाधि मेरी है, ऐसा मानना वह भव का बीज है। समझ में आया? आहाहा!

यह कहते हैं, यहाँ श्रद्धा—सम्यग्दर्शन... त्रिकाली चैतन्यस्वभाव पूर्णानन्द का नाथ भगवान आत्मा... आहाहा! कैसे जँचे? पामर होकर बैठा, उसे प्रभु कैसे जँचे? उसकी अपनी प्रभुता, हों! आहाहा! यहाँ कहते हैं कि इसकी त्रिकाली प्रभुत्वशक्ति... ज्ञान की प्रभुता, दर्शन की प्रभुता, आनन्द की प्रभुता, स्वच्छता की प्रभुता—ऐसी अनन्त शक्ति की प्रभुता जिसका—आत्मा का स्वभाव है। उसकी श्रद्धा कराने के लिये कि जो श्रद्धा मोक्ष का बीज है.... समझ में आया? आहाहा! वह **श्रद्धान करनवाने के निमित्त मूलभूत जीव के शुद्धस्वभाव...** देखो! वह पुण्य-पाप उसका किया हुआ कर्म सही, परन्तु वह मूलभूत स्वभाव नहीं है। कृत्रिम अज्ञानरूप से और अस्थिरतारूप से खड़ा किया हुआ भाव है। आहाहा! उसे उल्लंघकर... भगवान चिदानन्द प्रभु शुद्ध चैतन्य

ध्रुव आनन्द का धाम, वहाँ दृष्टि दे। वह स्वभावसहित है, विभावसहित नहीं। समझ में आया? आहाहा! ऐसी कठिन बातें, भाई! अब करने का अन्दर का अन्दर, भूला भी अन्दर का अन्दर। बाहर में भूले नहीं और बाहर में करने का नहीं होता। आहा!

कहते हैं, इस **अपेक्षा से रागादिभाव कर्म के...** ओहोहो! शुभ और अशुभ उपाधि, पुण्य और पाप के भाव मेरे, वह तो अनादि काल से त्रिकाली स्वभाव को भूलकर पर्यायदृष्टि में—राग की रुचि की दृष्टि में—वे मेरे, ऐसा तूने माना है, वह तो मिथ्यात्व है। समझ में आया? मिथ्या अर्थात् झूठा है और झूठे का फल संसार में भटकने का है। आहाहा! भारी कठिन पड़े यह। यह भाव **कर्म के निमित्त से होते हैं, इसलिए कर्मकृत कहा है।** इसका स्वभाव नहीं। अब दृष्टान्त देते हैं। अब यह भूत का। चन्दुभाई कहे, कल भूत का दृष्टान्त आयेगा।

जैसे किसी मनुष्य को भूत (-व्यंतर) लगा हो तो वह मनुष्य उस भूत के निमित्त से नाना प्रकार... अर्थात् अनेक प्रकार, अनेक प्रकार की **विपरीत चेष्टायें करता है।** भूत लगा हो भूत। एक तो हो मानो बन्दर और उसने मानो पी हो शराब और उसे मानो भूत लगे और काटा हो बिच्छु। समझ में आया? देख लो। एक तो स्वयं अपने से चंचल, उसमें उसे भूत लगे, उसमें किसी ने उसे शराब पिलायी हो। आहाहा! इसी प्रकार आत्मा... यह भूत का दृष्टान्त देंगे। **भूत (-व्यंतर) लगा हो तो वह मनुष्य उस भूत के निमित्त से नाना प्रकार...** अर्थात् अनेक प्रकार की **विपरीत चेष्टा...** हों! यह बन्दर यों ही बैठा हो न ऐसा... ऐसा... (चेष्टा) किया करे। देखा है न बन्दर को? उस बन्दर को लगे... यह भूत, उसे भूत लगता है। आहाहा! **इसलिए उन चेष्टाओं का कर्ता तो वह मनुष्य ही है...** भूत लगा हो, उसमें चेष्टा मनुष्य ऐसी करे... ऐसा करे... ऐसा करे... महिलायें चोटियाँ ऐसी करती हैं न? चोटियाँ खींचे, यह करे, यह करे... उसका **कर्ता तो वह मनुष्य ही है परन्तु वह चेष्टायें मनुष्य का निजभाव नहीं है...** भूत निकले तो चेष्टा रहे नहीं। **इसलिए चेष्टाओं को भूतकृत कहते हैं।** उस चेष्टा को इस कारण से भूत की की हुई कहते हैं। कर्ता जीव है, तथापि वह उपाधिभाव भूत का है, ऐसा कहकर उसे निकाल डालना चाहते हैं।

उसी प्रकार यह जीव कर्म के निमित्त से नाना प्रकार विपरीत भावोंरूप परिणमन करता है,... आहाहा! भगवान आनन्द का नाथ वह साधारण... साधारण भाव में... आहाहा! एक सब्जी अच्छी हो, भजिया अच्छे तले हुए आवे वहाँ प्रसन्न-प्रसन्न हो जाता है, हों! अरे! आज तो करकरिया भजिया, करेले की सब्जी और आमरस और घी में तली हुई पूड़ी। आहाहा! भगवान! क्या हुआ तुझे? आहाहा! यह कर्म के निमित्त से होती अज्ञान की चेष्टा है। आहाहा! आनन्द का नाथ! तुझमें अतीन्द्रिय आनन्द भरा है न प्रभु! आहाहा! तू तो नित्यानन्द हो। आहाहा! भाई! तुझे ऐसा कहाँ से सूझा? कहते हैं, कर्म के निमित्त से... उस भूत के निमित्त चेष्टा करे, इसलिए चेष्टा का करनेवाला वह मनुष्य को कहते हैं परन्तु भूतकृत है, ऐसा कहकर उसे निकाल डालना चाहते हैं। आहाहा! समझ में आया? मणिभाई नहीं आये अभी। ... आहाहा!

कहते हैं, इन संयोग में कर्म का निमित्त है और वह मनुष्य का निजभाव नहीं। **विपरीत भावोंरूप परिणमन करता है,...** है न? **उन भावों का कर्ता तो जीव ही है परन्तु वह जीव के निजभाव नहीं हैं, अत: उन भावों को कर्मकृत कहते हैं। अथवा कर्मकृत जो नाना प्रकार की पर्याय,...** अब क्या कहते हैं? जड़कर्म के निमित्त से अनेक प्रकार की पर्याय यह शरीर, शरीर की अवस्थायें रोगी, निरोगी, चेष्टा, आहाहा! पैर का ऐसा हिलना, हाथ की ऐसी चेष्टा होना, ऐसी अंगभंगिमा—यह सब जड़ की क्रिया, कर्म के निमित्त से (होती) शरीर की जड़ की सब क्रियायें हैं। आहा! उसे अज्ञानी अपनी मानता है, वही भव का बीज है, कहते हैं। **पर्याय, वर्ण—** शरीर का रंग... रंग। यह तो धूल का रंग है। यह सरीखा, रूपवान, कोमल सब अंग दिखाई दे, इसलिए मैं बहुत रूपवान हूँ। रूपवान तो जड़ है। आहाहा! तेरे रूप में तो आनन्द और ज्ञान भरे हैं, वह तेरा चैतन्यस्वरूप है। यह रूप तेरा है? परन्तु रूप दिखाने के लिये मिथ्या प्रयास करता है। आहाहा! समझ में आया?

वह एक दृष्टान्त नहीं दिया था? एक बार दिया था। एक थी कोलिन... कोलिन... समृद्ध घर बाई होगी, उसने पक्का घर अच्छा नया किया होगा और पक्के घर में रहती थी, उसमें कहीं सोने का कड़ा दिया होगा २५-५० रुपये का। तब सस्ता था न। २५

रुपये तोला, २४ रुपये तोला, बारह रुपये का आधा तोला। वह कोई पाँच-पाँच आधे तोला... अब कोई देखने आवे नहीं। करना क्या? बताना किस प्रकार? उसमें सुलगाया, वह घर सुलगाया और अरे भाई! ऐसे हाथ ऊँचा करके कड़ा बतलाना है। यह मेरा घर सुलगा है। परन्तु क्या है? यह कड़ा बतलाने के लिये पक्का घर सुलगाया! समझ में आया?

इसी प्रकार हमारा शरीर ऐसा, हम स्त्री-पुत्रवाले, हम भरे घरवाले और इज्जतवाले—ऐसे हमको जानो, वहाँ जलसा करे। मूरख पक्के घर का कोली जैसा है। समझ में आया? दरबार! ऐसा है। हम दरबार हैं, जमींदार हैं, हमें इतनी पचास हजार की आमदनी है। देखो! यहाँ अब ऐसा करो। क्या है परन्तु यह? भूतड़ा। आहाहा! हमारा बाग-बगीचा देखो! आहाहा! ५०-५० लाख के बँगले और घर में ५-५, १०-१० लाख के गहने महिलाओं पर जमाये हों सब ऐसे। जैसे भूत लगे, ऐसा सब लगाया हो। आहाहा! कहते हैं कि वे सब मेरे... अरे! उसे तो ठीक, परन्तु उसकी पुत्र की बहू हो और ५००-१०००-५००० की साड़ी पहनायी हो और कहीं विवाह प्रसंग में पहनकर निकले, दूसरे उसे दूसरी नजर से देखे, परन्तु इसे ऐसा कि किन्तु मेरी साड़ी तो बाहर आती है। आहाहा! गजब है न! मेरे घर की पाँच हजार की साड़ी तो लोग बाहर देखते हैं! ऐसा उल्टा अज्ञानी अनादि से अपने जाति को भूलकर, जो जाति इसकी नहीं, उसे बताने के लिये अभिमान करता है, वह मिथ्यात्व और अज्ञान है। आहाहा!

कहते हैं कि **रंग, गन्ध...** है न गन्ध? शरीर की सुगन्ध हो, कितनों को... क्या कहलाता है वह? वायु उसकी गन्ध ही मारे, श्वास मारे गन्ध और भगवान को श्वास हो सुगन्ध... सुगन्ध... सुगन्ध... वह मेरी है, मेरे शरीर की सुगन्ध है—ऐसा मानकर मूढ़, चैतन्यस्वरूप मेरा है, उसे भूल जाता है। आहाहा! **रंग, गन्ध, रस...** रस... रस... खट्टा, मीठा, ऊँचा, चरपरा... पूड़ी और अरबी के भजिया और श्रीखण्ड और पूड़ी, आहाहा! दूधपाक और चूरमा दोनों एक साथ में। खबर है भाई को। गढवा में... गढवा क्या कहलाता है? गढका है न पाँच कोस... बैठे थे। अपने लक्ष्मीचन्द थे न यह... जमींदार ने बनाया कुछ चूरमा और दूधपाक दोनों एकसाथ। शरीर में ठीक नहीं था तो भी दोनों खाये। फिर बात करते थे यहाँ। मुझे तब भी ऐसा हुआ कि इस शरीर को ठीक

नहीं तो भी... बाधक नहीं हों परन्तु। साता का उदय था, परन्तु जगत को दोनों चीज़ें तीन-तीन चीजें साथ में उठावे। अरे भगवान! वह तो जड़ है न? नाथ! उससे वृद्धि और उससे पुष्टि—यह मान्यता भ्रम और अज्ञान है। आहाहा!

कहते हैं, **स्पर्श...** कोमल मक्खन जैसा मेरा शरीर है। बापू! वह तो जड़ है न? नाथ! यह अग्नि उठेगी इसमें से। सुलगेगा तब लपटें... लपटें उठेंगी ऐसी अग्नि की। यह तो मिट्टी है। उसे अपना मानकर... वह भिन्न है, प्रत्यक्ष दिखते हैं, कहते हैं। समझ में आया? तथापि अज्ञानी भूत की भाँति नाचता है और चेष्टा करता है। आहाहा! कुछ कमाना आया हो, उसका उसे अभिमान होता है। इसे आया नहीं और देखो! मुझे यह दस हजार पैदा करना हो तो बात की बात है। उसमें क्या है? .... बापू! दस हजार पैदा कौन करे? दस हजार तेरे कहाँ थे? आहाहा!

कहते हैं, यह प्रत्यक्ष भिन्न है। **कर्म...** यह जड़कर्म भिन्न है। **देव-नारकी-मनुष्य-तिर्यंचशरीर...** आहाहा! यह **संहनन...** अर्थात् शरीर की हड्डियों की मजबूती प्रत्यक्ष भिन्न है। आहाहा! **संस्थान**— शरीर का आकार, भेद यह सब **अथवा पुत्र, मित्र, मकान, धन, धान्यादि भेद—इन समस्त से शुद्धात्मा प्रत्यक्ष भिन्न ही है।** ...कहो, यह तो प्रत्यक्ष भिन्न है। उन्हें और इसे कुछ सम्बन्ध नहीं है।

जिस प्रकार कोई मनुष्य अज्ञानी गुरु के कहने से एकान्त झोपड़ी में बैठकर भैंसे का ध्यान करने लगा,... आता है न समयसार में? भैंसे का ध्यान करने लगा। **अपने को भैंसे के समान विशाल शरीरवाला चिन्तवन करने लगा...** छोटा कमरा था, दरवाजा छोटा था। अन्दर बैठा वहाँ बड़ा भैंसा जैसा (हूँ, ऐसा) विचार हो गया। ओहोहो! **आकाश जितना ऊँचा सींगवाला अपने को मानकर सोचने लगा कि मैं इस झोंपड़ी से बाहर कैसे निकलूँगा।** अब सिर ऐसा, सींग बड़े हो गये मानो उसे उस ध्यान में। सिर ऐसा करने लगा निकलने के लिये। आहाहा! **चिन्तवन करने लगा। यदि वह अपने को भैंसा न माने तो मनुष्य स्वरूप तो स्वयं है ही।** वह तो मनुष्यस्वरूप ही है, भैंसा न माने तो।

उसी प्रकार यह जीव मोह के निमित्त से अपने को... वर्णवाला, गन्धवाला, रसवाला, पुत्रवाला, स्त्रीवाला **मानकर देवादि पर्यायों में अपनत्व मानता है।** मैं शरीर में

आया हूँ, मनुष्य में आया हूँ, पशु में आया हूँ। आहाहा! भाई! तू कहाँ आया है? वह तो शरीर है। भगवान! तू तो तेरे स्वरूप में है। बहुत तो तेरी पर्याय में आया है अवस्था में। पर में तो आया नहीं। आहाहा! मोह के निमित्त से उसे आया मानता है। **यदि न माने तो अमूर्तिक शुद्धात्मा तो आप बना ही बैठा है।** वह मेरे नहीं हैं, ऐसा यदि माने तब तो अरूपी चिदानन्द भगवान ही है। अज्ञान से उसे मेरेरूप मानता है। मेरे न माने तो शुद्ध चैतन्यमूर्ति है। इस मान्यता के स्वरूप में अन्तर पड़ने से वह कुछ है नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

जैसे बड़ा भूत लगा हो और चेष्टा करता हो, भूल निकल गया तो चेष्टा बन्द हो गयी। इसी प्रकार मान्यता में ऐसा माना था कि मैं ऐसा हूँ। आहाहा! किसी का बड़ा काम करता हूँ और ऐसा है तथा वैसा है और अमुक है और मैंने बहुत काम किये हैं। मैं तो..... इस संस्था का नायक हूँ और इस संस्था का अमुक हूँ और यह इस संस्था का.... ऐई, रमणीकभाई! इतने-इतने संस्था के काम के लिये रविवार... रविवार को जाना पड़े, घण्टे-घण्टे भर जाना पड़े। यह किसका कूंकता है परन्तु तू? क्या कहता है तू यह? आहाहा! यह अज्ञान की चेष्टा प्रसिद्ध करता है। छोड़ उसे, वह तू नहीं है। मैं तो चैतन्यमूर्ति भगवान हूँ, ऐसी मान्यता करे तो वस्तु ऐसी की ऐसी पड़ी है, कहते हैं। उसमें कुछ फेरफार है नहीं। आहाहा! **न माने तो अमूर्तिक शुद्धात्मा तो आप बना ही बैठा है। इस प्रकार यह आत्मा कर्मजनित रागादिकभाव...** है न अब अन्तिम योगफल? वह भूतकृत जो चेष्टा थी... रागादि... अघातिकर्म का फल संयोग है, घाति के निमित्त की ओर में राग है। कर्म के निमित्त से होते पुण्य-पाप के विकल्प, आहाहा! और अघातिकर्म— नाम, गोत्र, साता से प्राप्त रंग, गन्ध, शरीर का वर्ण आदि **उससे सदाकाल भिन्न है।**

कहा है कि... देखो! समयसार का श्लोक (३७) में से उद्धृत किया है।

'वर्णाद्या वा राग मोहादयो वा। भिन्ना भावाः सर्व एवास्य पुंसः ॥

इन अज्ञानी जीवों को आत्मा कर्मजनित भावों से भूत के निमित्त से चेष्टा और कर्म के निमित्त से विकार की चेष्टायें, उनसे संयुक्त प्रतिभासित होता है। पाठ है न वह का वह? बस, खाली इसका अर्थ मिलाया। **कर्मजनित भावों से संयुक्त प्रतिभासित**

होता है... मैं रागवाला, मैं पुण्यवाला, मैं पापवाला... आहाहा! मैंने शुभभाव किये, मैंने पापभाव किये, दूसरे की अपेक्षा मैं उत्कृष्ट पुण्य-पाप के भाव में—ऐसे भाव का कर्ता... संयुक्त नहीं होने पर भी अज्ञान में सहित भासित होता है। '**खलु सः प्रतिभासः भवबीजम्**।' ओहोहो! ज्ञान में यह पुण्य-पाप के भाव और संयोगी चीज़, वह अपनी है, ऐसा भासित होता है, वह मिथ्यात्व और अज्ञान ही संसार में भटकने का बीज है। समझ में आया? **यह ही संसार का बीजभूत है।**

भावार्थ :- जैसे समस्त वृक्षों का मूलभूत बीज है,... सब वृक्षों का मूलभूत बीज है। बीज हो तो वृक्ष होगा न? **वैसे ही अनन्त संसार का मूल...** अनन्त-अनन्त चींटियाँ, कौवे, कुत्ते, हाथी, नरक और आलू, शक्करकन्द के भव। आहाहा! परन्तु भूल गया। परन्तु भूल गया, इसलिए कहीं वस्तु नहीं थी? अनन्त-अनन्त भव में परिभ्रमण करता है। आहाहा! कहते हैं, उन **कर्मजनित भावों को अपना मानना, वह...** संसार का मूलभूत मिथ्यात्व है। इन राग-द्वेष के परिणाम को भी (अपने) मानना, वह मिथ्यात्व है, ऐसा कहते हैं, भाई! राग-द्वेष परिणाम वह (मिथ्यात्व) नहीं, ऐसा कहा। राग-द्वेष के परिणाम 'मेरे हैं' (ऐसा) मानना, वह संसार का बीज है, राग-द्वेष नहीं। राग-द्वेष.... नहीं। क्या कहा? थोड़े १५ मिनिट हैं। आज है न इसलिए जरा उकेलना है। भाई ने कहा था, चन्दुभाई ने। आहा! उसमें तो पूरा घण्टा पूरा हो, ऐसी चीज़ है। कल से....

कहते हैं, **अनन्त संसार का मूल...** महा झूठा मिथ्यात्वभाव, सत्य से विरुद्धभाव, सत्साहेब चिदानन्द प्रभु से विरुद्ध के पुण्य और पाप के भाव को अपने मानना, बस यह बात है। यह राग-द्वेष संसार का बीज है, ऐसा नहीं कहा। चन्दुभाई! यह राग-द्वेष के परिणाम मेरे (हैं-ऐसा) मानना, वह मिथ्यात्व संसार का बीज है। आहाहा! पण्डितजी! यह तो बहुत सादी भाषा है। इसमें कहीं संस्कृत और व्याकरण और.... आहाहा! कहते हैं, **जैसे समस्त वृक्षों का मूलभूत बीज है,...** जिस जाति का बीज हो, वह वृक्ष फलता है। **वैसे ही अनन्त संसार का मूल...** कर्म के निमित्त के संग में उपाधिभाव-मलिन भाव-पुण्य-पाप का भाव—शुभ-अशुभभाव को मेरा मानना, इसका नाम ग्रन्थि, इसका नाम मिथ्यात्व, इसका नाम अज्ञान, इसका नाम चार गति में भटकने का बीज है।

आहाहा! वह टलने के बाद थोड़े राग-द्वेष रहें, वह तो ज्ञाता का ज्ञेय है। समझ में आया? आहाहा! यह क्या कहा? कि पुण्य और पाप के विकल्प मेरे नहीं, ऐसा कब माना जाये? शुभ और अशुभ की वृत्तियाँ मेरी नहीं, यह कब माना जाये? कि उनकी ओर के झुकाव को छोड़कर अन्तर्मुख चिदानन्द भगवान वह (विकल्प—राग) बिना का—रहित है, उसकी अन्तर्दृष्टि और अनुभव करे, तब पुण्य-पाप मेरे नहीं, ऐसा इसने माना (कहा जाये)। समझ में आया? आहाहा! यह इसे करने का सम्यग्दर्शन। वजुभाई! यह तो एकदम सादी भाषा है।

भगवान! तू तो महाप्रभु है न भाई! उसमें ऐसी पामरता के परिणाम, वह प्रभुता के साथ जोड़ना... कभी जोड़ना... अब तब तोड़ना किस प्रकार? तो कहते हैं कि वर्तमान में जो पुण्य और पाप का प्रेम और रुचि है, उसका लक्ष्य छोड़ दे। आहाहा! और चिदानन्द स्वभाव से भरपूर भगवान आत्मा, वहाँ निधान पर नजर कर, वह राग की एकताबुद्धि तुझे टल जायेगी। जिसे ग्रन्थिभेद कहते हैं, उस ग्रन्थि का भेद हो जायेगा—नाश हो जायेगा। आहाहा! समझ में आया? रामायण में भाई आता है भाई! 'ग्रन्थिभेद'। तुलसी रामायण में है न? ग्रन्थि... यह ग्रन्थि हों! आता है उसमें। यह ग्रन्थिभेद करना, वह आत्मा का ज्ञान है। ऐ पोपटभाई! आहाहा! रमता राम चैतन्य अपने स्वरूप में रमे और राग की क्रीड़ा छोड़कर एकत्व हो, उसे आत्माराम कहने में आता है।

उस रावण की बात आती है न? सीता और रावण। सीता वश में हो... वह तो महासती ब्रह्मचारिणी समकिती ज्ञानी थीं। वश नहीं होती। तब उसे—रावण को किसी ने कहा कि अरे! राम का रूप धारण कर तो तेरे वश में होगी। यह राम का उछीनुं.... रावण कहता है, अरे! मैं राम का रूप धारण करता हूँ वहाँ वह मुझे बहिनरूप से भासित होती है। वहाँ मेरी सब कल्पना उड़ जाती है। वेश धारण करूँ वहाँ उड़ जाती है। समझ में आया? ऐसा कि तुम राम का रूप धारण करो तो सीता वश (होगी)। भाई! परन्तु जहाँ राम का वेश धारण करता हूँ न... हाथ में यह धनुष और.... ऐसा हो वहाँ... आहाहा! अरे! राम के वेश में भी जहाँ सीता बहिन दिखती है, वह राम मैं होऊँ तो क्या नहीं दिखेगा? समझ में आया?

जिसे राग का रंग अन्दर से उड़ गया है, आहाहा! अभी सम्यग्दर्शन का रूप धारण किया, वहाँ भगवान देखा। आहाहा! राग में रमता था, ऐसी दृष्टि जहाँ छोड़ी, आनन्द और ज्ञान में रमता राम प्रभु... आहाहा! आठ वर्ष की बालिका भी जब आत्मज्ञान पाती है। आहाहा! समझ में आया? उसे वर्तमान पुण्य और पाप के रंग का राग छूट जाता है और उसे आनन्दघन का रंग लगता है। मैं तो अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति हूँ। समझ में आया? बदलने में कितनी देर?

मुमुक्षु : एक समय।

पूज्य गुरुदेवश्री : कन्या का सम्बन्ध किया। १८-२० वर्ष की कन्या। घर में पचास लाख-करोड़ की पूँजी। वह कन्या ऐसा मानेगी कि हम करोड़पति हैं, परन्तु जहाँ सम्बन्ध किया, ख्याल में आ गया कि अमुक गाँव का यह दूल्हा है। यहाँ कालेज में पढ़ता तब मैं पहिचानती थी। उसे दो सौ (रुपये) वेतन है। उसके पिता के पास लाख-पचास हजार की पूँजी है। इस घर की मालिक नहीं अब। वह घर और वह वर। उसे कितनी देर लगती है? तथापि वह पड़ी है अभी यहाँ। अभी विवाह न हो, तब तक इसमें रहेगी, वर्ष, दो वर्ष, इसके (पिता के) घर में रहेगी। उसके चित्रित क्या कहलाता है वह?

मुमुक्षु : चाकला।

पूज्य गुरुदेवश्री : चाकला और भरा हुआ नारियल और तोरण, नारियल, वस्त्र... सुना हुआ हो अपने कहाँ...? उसे ऐसा हो जाता है कि यह मैंने किये हैं परन्तु मुझे दे या न दे, अब मैं मालिक नहीं। कैसे उत्साह से तोरण बनाये हों, नारियल मोती से भरा हो। आहाहा!

अरे! इंडुरी मोती से भरते हैं न? ऊपर रखे वहाँ ऐसी लटकती हो। यह तो देखा है न, देखा है न? वह सब इंडुरियों की भी अब मैं मालिक नहीं, हों! परन्तु इंडुरी अभी नहीं तो दूसरा होगा। यह गाँवों में बहुत है अभी। गाँव में गये थे, वह इंडुरी मोती की बाँधी हुई ऊपर रखी रखकर घड़ा (में) पानी भरने जाती। एक गाँव है। अन्दर सब गाँव भी देखे हों न। यह मोती की इंडुरी रखकर जाती थी भरने। कहा, हाँ, अभी साथ में लप

लगती है। यहाँ तो दूसरा कहना है। उसके भरे हुए भरतर... क्या कहलाता है वह? भरतर कहलाये न भरतर?

मुमुक्षु : भरत।

पूज्य गुरुदेवश्री : भरत। भरतर नहीं, भरत। इन सबका स्वामी(पना) भी उड़ गया, हों! वह अभी गयी नहीं, वहाँ उसकी स्वामी हो गयी। आहाहा!

इसी प्रकार भगवान आत्मा... आहाहा! पुण्य और पाप के रस के रंग जहाँ उड़े, तब उसे सब सामग्रियाँ भले हों, परन्तु उसमें दिखता है कि यह मैं नहीं... यह मैं नहीं। मैं वहाँ वे नहीं और वे, वहाँ मैं नहीं। आहाहा! ऐसी दृष्टि का पलटा होना, उसे भगवान सम्यग्दर्शन कहते हैं। कहो, समझ में आया? आत्मा का भान हुआ, पश्चात् भी राग-द्वेष और संयोग दिखते हैं, होते हैं, उसमें रहा दिखता है, परन्तु वह उसके नहीं हैं। समझ में आया? ब्याज से किसी के पैसे लाया हो, उसे पूँजी में खतौनी करता होगा? आहाहा! किसी समय विवाह करता हो और शोभायात्रा के लिये अच्छे घर से मोती का हार ले आया हो, उसे पूँजी में खतावे (गिने)? इसी प्रकार राग और पुण्य की रुचि जहाँ टूटी, आहाहा! चिदानन्दस्वभाव की दृष्टि और रुचि हुई, अब जो कुछ रागादि और बाहर सामग्री दिखती है, वह मेरी नहीं, हों! उसमें मैं नहीं, हों! वह मुझे नहीं, हों! वह मेरे कारण से आयी है, ऐसा नहीं। आहाहा! ऐसा दृष्टि का पलटा होना, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। कहो, समझ में आया? यह यहाँ बतलाने के लिये १४वीं गाथा... लालचन्दभाई ने यह लिखकर रखी थी। १४वीं गाथा लिखी थी न! यह प्रकाशित की थी यहाँ। **इस प्रकार अशुद्धता का कारण बताया।** लो, यह बतलाया। यह पुण्य और पाप मैल मेरा स्वभाव है, (यह मानना) मिथ्यात्व का कारण है। यह अशुद्धता का कारण बतलाया।

अब १५वीं गाथा जरा इसमें प्रकाशित नहीं, परन्तु यहाँ अपने १० मिनिट है।

मुमुक्षु : ऊपर से।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऊपर से। अब कहते हैं, तब अब पुरुषार्थसिद्धि का उपाय... यह राग की रुचि छोड़कर पुरुषार्थसिद्धि—आत्मा के पुरुषार्थ की सिद्धि करना—पुण्य-पाप का प्रेम छोड़कर पुरुषार्थ अर्थात् मोक्ष की सिद्धि करना—ऐसा पुरुषार्थ, इसका नाम

पुरुषार्थसिद्धि का उपाय है न? इसमें ऐसा अर्थ है... पहले आ गया है। पुरु अर्थात् उत्तम पदार्थ, ऐसा चेतनास्वभाव। पुरुष... पुरुष... पुरु—उत्तम चैतन्यस्वभाव, ष—वह वह। जो भगवान अपने उत्तम स्वभाव में स्वामीरूप से रहे, उसे पुरुष कहा जाता है। इसमें है पहला। ऐसा है। शुरुआत में है न? दूसरी-तीसरी कुछ है। तीसरी... तीसरी न? नौवीं। ओहो! बहुत आगे गया, लो, नौवीं में है। उसमें शुरुआत की है न।

'पुरुष चिदात्मा अस्ति'—पुरुष है, वह चैतन्यस्वरूप है। 'पुरु'—उत्तम चेतना गुण... आहाहा! व्यभिचारी राग में सो रहा है और राग को अपना मानता है। आहाहा! समझ में आया? कहते हैं कि पुरुष और पुरुष आत्मा उसे कहते हैं, आहाहा! उत्तम चेतना गुण में '**सेते**'— स्वामी होकर प्रवर्ते, उसका नाम पुरुष है। आहाहा! नौवीं गाथा है। नौ... नौ... यह पुरुष उसे कहते हैं। आहाहा! सवेरे कहा था। राग और द्वेष की रचना करे, वह उसकी नपुंसक जैसी दशा है। यहाँ कहाँ किससे लेना है कि कोई प्रसन्न हो तो पैसा दे? मार्ग यह है। पुण्य और पाप के विकारी परिणाम की रचना जो वीर्य रचे, वह नपुंसक जैसी बात, नपुंसकता जैसी बात है। भगवान आत्मा का वीर्य, वह तो आनन्द और शान्तिस्वरूप को रचे, उसे यहाँ आत्मा का वीर्य कहा जाता है। आहाहा!

कहते हैं... है? **उत्तम चेतना गुण...** भगवान का उत्तम चेतना (गुण)—जानना, देखना, आनन्द, उस गुण में (जो) **सेते** (वह) पुरुष। 'ष' है न 'ष'? 'ष' यह **सेते**। पण्डितजी! 'पुरुष' में से दो निकाले। पुरु-ष। **सेते**—स्वामी होकर प्रवर्ते। मैं तो आनन्द और ज्ञान का नाथ हूँ, ऐसा जो स्वरूप में स्वामी होकर प्रवर्ते, आहाहा! उसका नाम पुरुष है। आहाहा! मीराबाई से जब विवाह किया न राणा ने, तब राणा कहता है, चल अब पटरानी बनाऊँ। उस प्रकार की पंक्ति थी न उस प्रकार की। देखने गये थे वहाँ चित्तौड़ में। राणा! 'ए परणी मारा पियुजीनी साथ, बीजाना मिंढोळ नहीं बाँधुं हवे।' मैंने जिसके साथ—ईश्वर के साथ प्रीति की, अब मैं दूसरे को पतिरूप से मानूँ, यह दूसरे का मिंढोळ अब नहीं। आहाहा! 'ए परणी मारा पियुजीनी साथ, बीजाना मिंढोळ, नहीं रे बाँधुं हवे, नहीं रे बाँधुं रे राणा! नहीं रे बाँधुं, नहीं रे बाँधुं रे राणा! नहीं रे बाँधुं, परणी मारा पियुजीने साथ, बीजानां मिंढोळ नहीं रे बाँधुं।' यह परणी मेरे आत्मा के साथ, यह राग का प्रेम अब नहीं रे करूँ। यह बात है। यहाँ। आहाहा! एक परणी मारा पियुजीनी

साथ, बीजाना मिंढोळ, नहीं बाँधुं हवे।'

जिसमें मेरी लगन लगी... अरे! सती को पति एक होता है। आहाहा! समझ में आया? इसी प्रकार आत्मा की परिणति को पति एक आत्मा होता है, उसे राग और पुण्य उसका पति और स्वामी (नहीं होता)। आहाहा! अरे! इसके चैतन्यदुलारे की जो कीमत है, उसकी इसे खबर नहीं। हीरा और माणेक से भी अमूल्य—मूल्यांकन जिसका न हो, ऐसी वह चीज़ है। आहाहा! कहते हैं, ऐसा जो भगवान आत्मा अपने गुण में स्वामी होकर वर्ते। राग में, पुण्य में स्वामी होकर वर्ते, वह पुरुष नहीं, वह तो पर के घर जाकर सो रहा है। आहाहा! समझ में आया? भगवान आनन्द का नाथ, चैतन्यस्वभावी प्रभु अपने चैतन्य के स्वभाव का स्वामी होकर प्रवर्तता है, उसे भगवान (और) सन्त पुरुष कहते हैं। और जो राग तथा पुण्य में मेरा मानकर सोवे, उसे नपुंसकता जैसी बात कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? यह यहाँ १५ में कहते हैं।

विपरीताभिनिवेशं निरस्य सम्यग्व्यवस्य निजतत्त्वम्।
यत्तस्मादविचलनं स एव पुरुषार्थसिद्ध्युपायोऽयम्॥१५॥

विपरीत श्रद्धा का नाश करके.. आहाहा! अरे! परपदार्थ का प्रेम तो कहाँ रहा, परन्तु जिसे पुण्य और पाप के परिणाम में अन्दर से प्रेम उड़ गया है, आहाहा! जिसने पुण्य और पाप मेरे, ऐसी मान्यता का जिसने नाश किया है, जिसने अनन्त काल में यह किया नहीं था... आहाहा! समझ में आया? करने का हो तो यह है, भाई! कहते हैं, जिसने विपरीत श्रद्धा का नाश किया है। देखो! **निजस्वरूप को यथार्थरूप से...** जाना है। आहाहा! भाव—शुभ और अशुभभाव, उससे मेरी चीज़ भिन्न है, ऐसा जिसे आत्मज्ञान हुआ है, ऐसी जिसे आत्मश्रद्धा हुई है, उसने 'राग मेरा' ऐसी विपरीत श्रद्धा का नाश किया है। आहाहा!

और **निजस्वरूप को यथार्थरूप से...** वह तो नाश किया, अब हुआ क्या? भगवान सच्चिदानन्द प्रभु पूर्ण ज्ञान और आनन्द का धाम (ऐसे) स्वरूप को जिसने अन्दर से जान लिया। आहाहा! एक को जिसने जाना, उसने सबको जाना। श्रीमद् में आता है न? 'जब जाना निजरूप को, तब जाना सब लोक, न जाना निजरूप को, सब जाना सो

फोक।' आहाहा! वहाँ तो ऐसा भी आया है कि मुझे (-देव को) जाना वह फोक, गुरु को जाने तो फोक, (यदि) निजस्वरूप को न जाने तो। ऐसा अर्थ है अन्दर, हों! समझ में आया? यह अपने श्लोक है, यह इसमें लिखा है...

कहते हैं, ऐसा **जानकर जो अपने उस स्वरूप में से भ्रष्ट न होना...** आहाहा! लाख-करोड़ अनन्त प्रतिकूलता हो, दुनिया इसे पागल कहे, इसे गहल कहे। परन्तु यह क्या? आहा! पुण्य-पाप बिना की चीज़ यह और तू है? आनन्द है और चाहिए है? साथ में है, इसके पास पड़ा है। इसे अन्तर में राग की रुचि छोड़कर अनन्त काल में किया नहीं, ऐसा सम्यग्दर्शन किया और मिथ्याश्रद्धा का जिसने नाश किया, आहा! वह **अपने उस स्वरूप में से भ्रष्ट न होना, वही इस पुरुषार्थसिद्धि का उपाय है।** लो, यही आत्मा की सिद्धि करने का उपाय है। यह गाथा ऐसी है। चन्दुभाई! १४ में कहा उसका सार ले लिया। करने का यह है भगवान! यदि जन्म सफल करना हो, नहीं तो व्यर्थ जायेगा। आहाहा! जिसने पुण्य-पाप के मलिनता के भाव मेरे, ऐसी श्रद्धा नाश की और त्रिकाली आनन्दकन्द हूँ, ऐसी जिसने श्रद्धा प्रगट की और अविचलरूप से भ्रष्ट न हो, उसे पुरुषार्थसिद्धि—अपने आत्मा की सिद्धि का उपाय हाथ लगा, ऐसा उसे कहा जाता है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)